वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं.457
ISBN-978-93-84003-68-5

जिनधर्म विधान

–रचयित्री –

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी,
दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत
परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी

हस्तिनापुर में निर्मित विश्व की अनुपम कृति जम्बूद्वीप रचना के पंचवर्षीय महामहोत्सव चैत्र कृ. 12, 17 मार्च 2015 के अवसर पर प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र., फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org, E-mail : jambudweeptirth@gmail.com
Facebook : jaintirthjambudweep

COURTESY–JAIN BOOK DEPOT
C/o Shri Nabhi Kumar Manav Kumar Jain
C-4, Opp. PVR Plaza, Cannaught Place, New Delhi-1
Ph.-011-23416101-02-03/Website : www.jainbookdepot.com

प्रथम संस्करण	वीर नि. सं. 2541	मूल्य
1100 प्रतियाँ	चैत्र कृ. द्वादशी, 17 मार्च 2015	16/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी
(दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी
(पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: निर्देशक एवं सम्पादक:–

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

–: प्रबंध सम्पादक :–

जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

सम्पादकीय

–कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

आज के भौतिकवादी युग में मनुष्य को अपने जीवन में आत्मोन्नति के लिये संतों का समागम आवश्यक है किन्तु जहाँ संतों का सानिध्य सरलता से प्राप्त नहीं हो पाता ऐसे मानवों के लिये सत्साहित्य ही उनके लिये सही मार्गदर्शन प्रदान कर सकते हैं।

वर्तमान समय में देव, शास्त्र, गुरु की भक्ति ही हमें इस संसार से पार करने में सशक्त माध्यम है।

ऐसे विषम समय में आज की पीढ़ी को जैनधर्म की ओर उन्मुख करने के लिये भक्तिमार्ग ही एक ऐसा मार्ग है, जो जनमानस को धर्म के लिये प्रेरित करता है। पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने बालकों से लेकर वृद्धों तक सभी के लिये बाल विकास से लेकर अष्टसहस्री जैसे क्लिष्ट ग्रंथों का लेखन कर समाज को प्रदान किया है। इसी श्रृंखला में अनेक पूजा–विधानों की भी रचनाएँ की हैं जिन्हें देश–विदेशों में सभी भक्तजन भक्तिभाव से करते हैं। पूज्य माताजी द्वारा लिखित लगभग 400 ग्रंथों का प्रकाशन इस ग्रंथमाला से हुआ है, जो भव्यात्माओं के लिये कल्याण का मार्ग प्रशस्त करेंगी। इन्हीं कृतियों में एक और नवीन कृति ''जिनधर्म विधान'' की रचना हुई है, जिसकी पूजन करके भक्तजन भक्ति गंगा में डुबकी लगाकर जिनधर्म की प्रभावना करके विशेष पुण्यार्जन करेंगे।

यह विधान आप सबके जीवन में मंगलकारी हो, शांति प्रदान करे, यही मंगल भावना है।

प्रस्तावना

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

श्री गौतम स्वामी ने चैत्यभक्ति में नवदेवताओं की वंदना करते हुए कहा है—

इति पंचमहापुरुषाः, प्रणुता जिनधर्म–वचन चैत्यानि।
चैत्यालयाश्च विमलां, दिशन्तु बोधिं बुधजनेष्टां।।10।।

अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनवचन, जिनचैत्य और जिनचैत्यालय ये नवदेवता बुधजन जो गणधर देवादि इनको इष्ट ऐसी मुझे निर्मल बोधि देवें। आगम में इन नवदेवताओं को पूज्य कहा गया है तथा इनकी भक्ति, पूजा करने से महान पुण्य का बंध होता है।

जिनधर्म को भी एक देवता कहा गया है। जिनधर्म अर्थात् जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रणीत धर्म जो तीनों लोकों में मंगल रूप महान तथा सबसे उत्तम है जो इसकी शरण में आता है वह संसार समुद्र से अवश्य पार हो जाता है।

इस जिनधर्म विधान में सर्वप्रथम मंगलाचरण में संपूर्ण मंगल की कामना की गई है। पुनः चौबीस तीर्थंकर पूजा दी गई है। जिनधर्म विधान पूजा में कुल 51 अर्घ्य और 10 पूर्णार्घ्य दिये गए हैं। जिनमें क्रम से वस्तु स्वभाव धर्म, सप्तभंग के 7, जीवदया धर्म, रत्नत्रय धर्म, आठ अंग के 8, सम्यग्ज्ञान के 8, श्रावकधर्म के 2, मुनिधर्म के 13, और दशधर्म के 10 इस प्रकार कुल 51 अर्घ्य हैं। तथा पाँच भरत–पाँच–ऐरावत विदेह के 5 पूर्णार्घ्य सहित कुल 10 पूर्णार्घ्य हैं। पूजन की जयमाला में अनादि निधन जैनधर्म की विशेषताओं का वर्णन करते हुए इसे धारण करने वाले एक दिन मुक्ति लक्ष्मी को प्राप्त करते हैं ऐसा पूज्य माताजी ने केवल 7 काव्यों के माध्यम से बता दिया है। अंत में बड़ी जयमाला में केवली भगवान के देवकृत ग्यारह अतिशयों का तथा स्याद्वादमय उनकी दिव्यवाणी में सप्तभंग का बहुत ही सुंदर वर्णन है।

श्रावकों के षट् आवश्यक कर्तव्यों में देवपूजा प्रथम है जिसके माध्यम से भक्ति करके असीम पुण्य का संचय तो होता ही है साथ–साथ स्वाध्याय भी हो जाता है क्योंकि पूज्य माताजी ने तो अपनी पूजाओं में चारों अनुयोगों का सार ही भर दिया है। जिसके द्वारा पूजा के साथ स्वाध्याय का भी लाभ

प्राप्त हो जाता है।

पूज्य माताजी ने विधान की प्रशस्ति में जिनधर्म की महिमा बताते हुए लिखा है।

त्रिभुवन में धर्म वही उत्तम, जो श्रेष्ठ सुखों में धरता है।
सांसारिक सभी सौख्य देकर, मुक्तीपद तक पहुँचाता है।।
इस रत्नत्रयमय धर्मतीर्थ के, कर्ता तीर्थंकर बनते।
इनको प्रणमूँ मैं बार बार, ये सर्व आधि व्याधी हरते।।

इस प्रकार इस विधान को करने वाले सभी भक्तगण अपने मनोवांछित कार्यों की सिद्धि करें यही मंगल भावना है।

दो शब्द

–आर्यिका सुदृढ़मती (संघस्थ)

हम प्रतिदिन चत्तारि मंगल पाठ में उच्चारण करते हैं। केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगल, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो शरणं पव्वज्जामि। अर्थात् केवली भगवान द्वारा प्रणीत धर्म मंगल है, तीनों लोकों में उत्तम है और मैं इस धर्म की शरण लेता हूँ। क्योंकि ये ही मुझे शाश्वत सुख संपत्ति को प्राप्त कराने वाला है। पूज्य माताजी ने भी अपनी नवदेवता पूजा में लिखा है—

जिनधर्म चक्र सर्वदा चलता ही रहेगा।
जो इसकी शरण ले वो सुलझता ही रहेगा।।

जब तीर्थंकर प्रभु का श्री विहार होता है तो धर्मचक्र आगे–आगे चलता है जिससे पृथ्वी के जीवों के दुःख दारिद्र्य सब भाग जाते हैं और चारों तरफ सुभिक्ष हो जाता है। समवसरण में सर्वाण्हयक्ष चारों दिशाओं में अपने सिर पर धर्मचक्र को धारण किये रहते हैं। यह धर्मचक्र जिनधर्म का प्रतीक है। यह जिनधर्म अनादि और अनंत है इसकी उपासना से संसार का अंत निकट हो जाता है।

वर्तमान में जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने अनेक पूजा–विधानों की रचना करके देश–विदेशों में भक्ति गंगा प्रवाहित कर दी है जिनके माध्यम से सभी भव्यात्मा भगवान की भक्ति में मग्न होकर अपने असंख्य कर्मों की निर्जरा कर लेते हैं। माताजी ने सर्वप्रथम नवदेवता पूजा की रचना कर पंचपरमेष्ठी के साथ–साथ जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य और चैत्यालय इन चार देवताओं की भी आराधना की जाती है ये भी पूज्य हैं यह सभी को बता दिया। यह नवदेवता पूजा कल्पना नहीं है क्योंकि साक्षात् गौतम स्वामी ने इनकी वंदना ''चैत्यभक्ति'' के माध्यम से चतुर्थकाल में की है जो स्वयं अनेक ऋद्धियों तथा चार ज्ञान के धारी थे। पूज्य माताजी ने ''जिनधर्म विधान'' की रचना कर सभी को जिनधर्म अर्थात् जैनधर्म की महिमा से अवगत कराया है कि जो भौतिक व आध्यात्मिक दोनों संपत्ति को प्रदान, करने वाला है।

इसीलिये उन्होंने अपनी पंक्तियों में लिखा है—

जिनेंद्र धर्म से सुचक्रवर्ति संपदा मिले।
जिनेंद्र धर्म से सुरेंद्र की भी संपदा मिले।।
जिनेंद्र धर्म से हि तीर्थनाथ संपदा मिले।
जिनेंद्र धर्म से हि शीघ्र मुक्ति वल्लभा मिले।।

ऐसे महान जिनधर्म की शरण में रहकर मैं भी अपने संसार का शीघ्र अंत करूँ यही भावना है। इस युग में जिनधर्म की पताका को आकाश की ऊँचाइयों तक पहुँचाने वाली पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के चरणों में शत–शत बार नमन करती हूँ जिनकी कृपा से मैंने इस अनादि जिनधर्म के मार्ग में कदम बढ़ाकर संयम को धारण किया है।

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान– टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.

जन्मतिथि– आसोज सुदी 15 (शरदपूर्णिमा) वि. सं. 1991, (22 अक्टूबर सन् 1934)

जाति– अग्रवाल दि. जैन, **गोत्र–** गोयल, **नाम–** कु. मैना

माता-पिता– श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन

आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत– ई. सन् 1952, बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन

क्षुल्लिका दीक्षा– चैत्र कृ. 1, ई. सन् 1953 को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से। नाम-क्षुल्लिका वीरमती

आर्यिका दीक्षा– वैशाख कृ. 2, ई. सन् 1956 को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती 108 आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।

साहित्यिक कृतित्व– अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं लगभग 300 ग्रंथों की लेखिका।

डी.लिट्. की मानद उपाधि– सन् 1995 में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा एवं तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद द्वारा 8 अप्रैल 2012 को ''डी.लिट्.'' की मानद उपाधि से विभूषित।

तीर्थ निर्माण प्रेरणा– हस्तिनापुर में जंबूद्वीप, तेरहद्वीप, तीनलोक आदि रचनाओं के निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास यथा-भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकास, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी मंदिर, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा, मांगीतुंगी में निर्माणाधीन 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा, महावीर जी तीर्थ पर महावीर धाम में पंचबालयति मंदिर, शिर्डी में ज्ञानतीर्थ, सम्मेदशिखर में आचार्य श्री शांतिसागर धाम इत्यादि।

महोत्सव प्रेरणा– पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव, दिल्ली में कल्पद्रुम महामण्डल विधान का ऐतिहासिक आयोजन इत्यादि। विशेषरूप से 21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप स्थल पर विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन भारत की तत्कालीन राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील द्वारा किया गया।

शैक्षणिक प्रेरणा– 'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार, ऑनलाइन जैन इनसाइक्लोपीडिया आदि।

रथ प्रवर्तन प्रेरणा– जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (1982 से 1985), समवसरण श्रीविहार (1998 से 2002), महावीर ज्योति (2003-2004) का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

विषयानुक्रमणिका

क्र. सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	मंगलाचरण	1
2.	चौबीस तीर्थंकर पूजा	3
3.	जिनधर्म विधान पूजा	7
4.	बड़ी जयमाला	27
5.	प्रशस्ति	30
6.	आरती	31
7.	भजन	32

मंडल का नक्शा

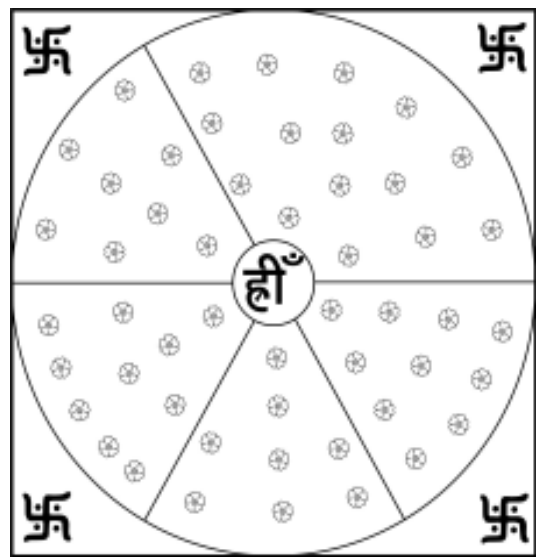

इस मण्डल में कुल 51 अर्घ्य और 10 पूर्णार्घ्य हैं।

प्रथम वलय में	**8 अर्घ्य**
द्वितीय वलय में	**10 अर्घ्य**
तृतीय वलय में	**8 अर्घ्य**
चतुर्थ वलय में	**15 अर्घ्य**
पंचम वलय में	**10 अर्घ्य**
कुल	**51 अर्घ्य**

जिनधर्म विधान

मंगलाचरण

अर्हन्तो मंगलं कुर्युः, सिद्धाः, कुर्युश्च मंगलम्।
आचार्याः पाठकाश्चापि, साधवो मम मंगलम्।।1।।

क्षान्त्यार्जवादिगुणगण–सुसाधनं सकललोकहितहेतुम्।
शुभधामनि धातारं, वन्दे धर्मं जिनेन्द्रोक्तम्।।2।।

धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो, धर्मं बुधाश्चिन्वते।
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं, धर्माय तस्मै नमः।
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद्भवभृतां, धर्मस्य मूलं दया।
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं, हे धर्म ! मां पालय।।3।।

–आर्या–छंद–

चारित्रं सर्वजिनैश्चरितं, प्रोक्तं च सर्वशिष्येभ्यः।
प्रणमामि पंचभेदं, पंचमचारित्रलाभाय।।4।।

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तस्स पणमंति, जस्स धम्मे सया मणो।।5।।

–उपेन्द्रवज्रा छंद–

समुद्धृत्य जीवान् जगद्दुःखतो यः।
धरत्युत्तमे धाम्नि, धर्मः स एव।।
श्रितानां त्रिलोकेश संपत्प्रदाता।
सुधर्मः प्रकुर्यात् सदा मंगलं मे।।6।।

अनुष्टुप् छंद

अहिंसा परमो धर्मः, कुर्यात् जगति मंगलम्।
मंगलं स्यात् त्रिरत्नानि, दशधर्मोऽपि मंगलम्।।7।।

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुदकुंदाद्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।।8।।

अथ जिनयज्ञप्रतिज्ञापनाय मंडलस्योपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

चौबीस तीर्थंकर पूजा

–अथ स्थापना-शंभु छंद –

पुरुदेव आदि चौबिस तीर्थंकर, धर्मतीर्थ करतार हुये।
इस जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र के, आर्यखंड में नाथ हुये।।
इन मुक्तिवधू परमेश्वर का, हम भक्ती से आह्वान करें।
इनके चरणाम्बुज को जजते, भव भव दुःखों की हानि करें।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवादिचतुर्विंशतितीर्थंकरसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवादिचतुर्विंशतितीर्थंकरसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवादिचतुर्विंशतितीर्थंकरसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

–अथ अष्टकं-गीता छंद –

हे नाथ! मेरी ज्ञानसरिता, पूर्ण भर दीजे अबे।
इस हेतु जल से आप के, पदकमल को पूजूँ अबे।।
चौबीस तीर्थंकर जिनेश्वर, की करूँ मैं अर्चना।
इन पूजते निजसौख्य पाऊँ, करूँ यम की तर्जना।।1।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवादिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यः जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

निज आत्म में सम्पूर्ण शीतल, सलिल धारा पूरिये।
तुम चरण युगल सरोज में, चंदन चढ़ाऊँ इसलिए।।चौबीस.।।2।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवादिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षय अखंडित सौख्य निधि, भंडार भर दीजे प्रभो।
इस हेतु अक्षत पुंज से, मैं पूजहूँ तुम पद विभो।।चौबीस.।।3।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवादिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

मुझ आत्मगुण सौगंध्य सागर, पूर्ण भर दीजे प्रभो।
इस हेतु मैं सुरभित सुमन ले, पूजहूँ तुम पद विभो।।
चौबीस तीर्थंकर जिनेश्वर, की करूँ मैं अर्चना।
इन पूजते निजसौख्य पाऊँ, करूँ यम की तर्जना।।4।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवादिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यः कामबाणविनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मेरी करो परिपूर्ण तृप्ती, आत्म सुख पीयूष से।
भगवन्! अतः नैवेद्य से, पूजूँ चरण युग भक्ति से।।चौबीस.।।5।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवादिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु ज्ञान ज्योती मुझ हृदय में, पूर्ण भर दीजे अबे।
मैं आरती रुचि से करूँ, अज्ञानतम तुरतहिं भगे।।चौबीस.।।6।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवादिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यः मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

मुझ आत्मयश सौरभ गगन में, व्याप्त कर दीजे प्रभो।
इस हेतु खेऊँ धूप मैं, कटुकर्म भस्म करो विभो।।चौबीस.।।7।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवादिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यः अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

निज आत्मगुण संपत्ति को, अब पूर्ण भर दीजे प्रभो।
इस हेतु फल को मैं चढ़ाऊँ, आपके सन्निध विभो।।चौबीस.।।8।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवादिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यः मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अनमोल गुण निज के अनंते, किस विधी से पूर्ण हों।
बस अर्घ्य अर्पण करत ही, निज "ज्ञानमति" सुख पूर्ण हो।।चौबीस.।।9।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवादिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–दोहा –

तीर्थंकर चरणाब्ज में, धारा तीन करंत।
त्रिभुवन में भी शांति हो, निजगुण मणि विलसंत।।10।।

शांतये शांतिधारा।

जिनवर चरण सरोज में, सुरभित कुसुम धरंत।
सुख संतति संपति बढ़े, आत्म सौख्य विलसंत।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य – ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवर्धमानान्तेभ्यो नमः।

जयमाला

–चौबोल छंद –

आवो हम सब करें वंदना, चौबीसों भगवान की।
तीर्थंकर बन तीर्थ चलाया, उन अनंत गुणवान की।।
जय जय जिनवरं-4

आदिनाथ युग आदि तीर्थंकर, अजितनाथ कर्मारि हना।
संभवजिन भव दुःख के हर्ता, अभिनंदन आनंद घना।।
सुमतिनाथ सद्बुद्धि प्रदाता, पद्मप्रभु शिवलक्ष्मी दें।
श्री सुपार्श्व यम पाश विनाशा, चन्द्रप्रभू निज रश्मी दें।।
केवलज्ञान सूर्य बन चमके, त्रिभुवन तिलक महान की।। तीर्थं.।।1।।
जय जय जिनवरं-4

पुष्पदंत भव अंत किया है, शीतल प्रभु के वच शीतल।
श्री श्रेयांस जगत हित कर्ता, वासुपूज्य छवि लाल कमल।।
विमलनाथ ने अघ मल धोया, जिन अनंत गुण अन्तातीत।
धर्मनाथ वृषतीर्थ चलाया, शांतिनाथ शांतिप्रद ईश।।
शांतीच्छुक जन शरण आ रहे, ऐसे करुणावान की।।तीर्थं.।।2।।
जय जय जिनवरं-4

कुंथुनाथ करुणा के सागर, अर जिन मोह अरी नाशा।
मल्लिनाथ यममल्ल विजेता, मुनिसुव्रत व्रत के दाता।।
नमिप्रभु नियम रत्नत्रय धारी, नेमिनाथ शिवतिय परणा।
पार्श्वनाथ उपसर्ग विजेता, महावीर भविजन शरणा।।
इनने शिव की राह दिखाई, जन-जन के कल्याण की।।तीर्थं.।।3।।

जय जय जिनवरं-4

तीर्थंकर के जन्म समय से, दश अतिशय श्रुत में गाये।
केवलज्ञान प्रगट होते ही, दश अतिशय गणधर गायें।।
देवोंकृत चौदह अतिशय हों, सुंदर समवसरण रचना।
इन्द्र-इन्द्राणी देव-देवियाँ, गाते रहते गुण गरिमा।।
सभी भव्य गुण कीर्तन करते, अभयंकर जिननाम की।।तीर्थं.।।4।।
जय जय जिनवरं-4

तरु अशोक सुरपुष्पवृष्टि, भामंडल चामर सिंहासन।
तीन छत्र सुरदुंदुभि बाजे, दिव्यध्वनी है अमृतसम।।
आठ महा ये प्रातिहार्य हैं, गंधकुटी में प्रभु शोभें।
विभव वहाँ का सुर नर पशु क्या, मुनियों का भी मन लोभे।।
गणधर गुरु भी संस्तुति करते, अविनश्वर भगवान की।।तीर्थं.।।5।।
जय जय जिनवरं-4

दर्शन ज्ञान सौख्य वीरज ये, चार अनंत चतुष्टय हैं।
ये छ्यालिस गुण अर्हंतों के, फिर भी गुणरत्नाकर हैं।।
क्षुधा तृषादिक दोष अठारह, प्रभु के कभी नहीं होते।
वीतराग सर्वज्ञ तीर्थंकर, हित उपदेशी ही होते।।
परम पिता परमेश्वर स्वामिन्! पूजा कृपानिधान की।।तीर्थं.।।6।।
जय जय जिनवरं-4

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवर्धमानान्त्यचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो जयमाला महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

–सोरठा –

धर्मचक्र के नाथ, द्विविध धर्मकर्ता प्रभो।
नमूँ नमाकर माथ, ''ज्ञानमती'' कलिका खिले।।1।।

।।इत्याशीर्वादः।।

जिनधर्म विधान पूजा

अथ स्थापना–गीताछंद

उत्तम क्षमादी धर्म हैं , औ दया धर्म प्रधान है।
वस्तू स्वभाव सु धर्म है, औ रत्नत्रय गुणखान है।।
जो जीव को ले जाके धरता , सर्व उत्तम सौख्य में।
वह धर्म है जिनराज भाषित, पूजहूँ तिहुँकाल मैं।।1।।

–दोहा–

भरतैरावत क्षेत्र में, चौथे पांचवे काल।
शाश्वत रहे विदेह में, धर्म जगत् प्रतिपाल।।2।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु प्रवर्तमानकेवलिप्रणीतजिनधर्म! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु प्रवर्तमानकेवलिप्रणीतजिनधर्म! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं ।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु प्रवर्तमानकेवलिप्रणीतजिनधर्म! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

अष्टक–चाल–नंदीश्वर पूजा

रेवानदि को जल लाय, कंचन भृंग भरूँ।
त्रयधार करूं सुखदाय, आतम शुद्ध करूँ।।
जिनधर्म विश्व का धर्म , सर्व सुखाकर है।
मैं जजूँ सार्वहित धर्म , गुण रत्नाकर है।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु प्रवर्तमानकेवलिप्रणीतजिनधर्माय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।।1।।

मलयागिरी चंदन गंध , घिस कर्पूर मिला।
जजते ही धर्म अमंद , निज मन कमल खिला।।जिनधर्म0।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु प्रवर्तमानकेवलि प्रणीत जिनधर्माय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।।2।।

शशिकर सम तंदुल श्वेत, खंड विवर्जित हैं।
शिवरमणी परिणय हेत, पुंज समर्पित हैं।।जिनधर्म0।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु प्रवर्तमानकेवलिप्रणीत–जिनधर्माय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।।3।।

सित कुमुद नील अरविंद, लाल कमल प्यारे।
मदनारि विजयहित धर्म, पूजूँ सुखकारे।।जिनधर्म0।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु प्रवर्तमानकेवलिप्रणीत–जिनधर्माय कामवाणविनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।।4।।

पूरणपोली पयसार[1] , पायस मालपुआ।
जिनधर्म सुधासम पूज , आतम सौख्य हुआ।।जिनधर्म0।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु प्रवर्तमानकेवलिप्रणीत–जिनधर्माय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।।5।।

मणि दीप कपूर प्रजाल, ज्योति उद्योत करे।
अंतर में भेद विज्ञान, प्रगटे मोह हरे।।जिनधर्म0।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु प्रवर्तमानकेवलिप्रणीत–जिनधर्माय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।।6।।

दश गंध अग्नि में जार, सुरभित गंध करे।
निज आतम अनुभवसार, कर्म कलंक हरे।।जिनधर्म0।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु प्रवर्तमानकेवलिप्रणीत–जिनधर्माय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।।7।।

एला केला फल आम्र, जंबू निंबु हरे।
शिवकांता संगम हेतु तुम ढिग भेंट करे।।जिनधर्म0

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु प्रवर्तमानकेवलिप्रणीत–जिनधर्माय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।।8।।

सलिलादिक द्रव्य मिलाय, कंचनपात्र भरें।
जिनवृष को अर्घ चढ़ाय, शिवसाम्राज्य वरें।।जिनधर्म0।।

---

1. मलाई।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु प्रवर्तमानकेवलिप्रणीत-जिनधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।9।।

-दोहा-

शांतिधारा मैं करूँ, जैन धर्म हितकार।
चउसंघ में शांति करो, हरो सर्व दुःख भार।।10।।

शांतये शांतिधारा।

पुष्पांजलि से पूजहूं, श्री जिनधर्म महान्।
दुःख दारिद संकट टले, बनूं आत्मनिधिमान।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

अथ प्रत्येक अर्घ

(51 अर्घ्य)

-सोरठा-

मंगल रूप महान् , जग में लोकोत्तम कहा।
श्री केवलि भगवान् , कथित धर्म सबको शरण।।1।।

इति मंडलस्योपरि प्रथम दले पुष्पांजलिं क्षिपेत्

(8 अर्घ्य)

(वस्तु स्वभाव धर्म अर्घ्य)

-नरेन्द्र छंद-

वस्तु स्वभाव हि धर्म कहाता, जल स्वभाव से शीतल।
आत्म स्वभाव ज्ञान दर्शन मय, शुद्ध भाव से निर्मल।।
यह स्वभाव है तर्क अगोचर, इसकी पूजा करके।
वस्तु स्वभावी शुद्धात्मा को, प्राप्त करूँ जिन वृष से।।1।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु प्रवर्तमानवस्तुस्वभावमय जिनधमार्य अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सप्तभंग के 7 अर्घ्य)

सर्व वस्तु में धर्म अनंते , अस्ति नास्ति आदिक हैं।
सर्व परस्पर कहे विरोधी , फिर भी रहें युगपत् हैं।।

सप्त भंग युत स्याद्वाद ही, इन विरोध परिहारे।
स्यादस्ति वस्तु स्वचतुष्टय से , इसे जजूँ रुचिधारे।।2।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सप्तभंगस्याद्वादस्य स्यादस्तिधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नास्ति धर्म यह वस्तू में, अन्य चतुष्टय से नहिं।
अन्य द्रव्य औ क्षेत्र काल औ, अन्य भाव से वह नहिं।।
इस नास्तित्व धर्म से वस्तू , निज स्वरूप से रहती।
परस्वरूप से नास्ति रूप है, इसे जजूँ बहु भक्ती ।।3।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सप्तभंगस्याद्वादस्य स्यान्नास्तिधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अस्ति नास्ति ये उभय धर्म भी, एक साथ ही रहते।
स्वपर चतुष्टय क्रम से कहते, नहीं विरोधी दिखते।।
स्यादस्तिनास्ति भंग तीसरा, सब वस्तु में तिष्ठे।
अर्घ चढ़ाकर इसको पूजूँ , वस्तु स्वभाव प्रतिष्ठे।।4।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सप्तभंगस्याद्वादस्य स्यादस्तिनास्तिधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एक साथ नहिं कह सकते इन, अस्ति नास्ति दोनों को।
चौथा भंग इसी से बनता , अवक्तव्य से समझो।।
स्वपर चतुष्टय से युगपत् यह, धर्म वस्तु में रहता।
इसको पूजूँ यह स्वभाव भी, अलग नहीं हो सकता।।5।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सप्तभंगस्याद्वादस्य स्यादवक्तव्यधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वद्रव्यादि से वस्तु अस्ति है , अवक्तव्य उस ही क्षण।
स्वपर चतुष्टय एक साथ लें नहिं कह सकते तत्क्षण।।
स्यादस्ति सह अवक्तव्य यह, भंग पांचवां माना।
इसे पूजते बनें स्वधर्मी, वस्तु स्वभाव सुहाना।।6।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सप्तभंगस्याद्वादस्य स्यादस्ति-अवक्तव्यधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वस्तु नास्ति पर द्रव्यादिक से, अवक्तव्य भी समझो।
स्वपर चतुष्टय से कहने में , नहिं आवें उस क्षण वो।।
भंग छठा स्यान्नास्ति अवक्तव्य इसे पूजूँ रूचि से।
वस्तु स्वभाव धर्म यह माना , कहा गया जिनवर से ।।7।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सप्तभंगस्याद्वादस्य स्यान्नास्ति-अवक्तव्यधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वपर चतुष्टय से क्रम से कहने में अस्ति नास्ती।
एक साथ नहिं कह सकने से, अवक्तव्य होता भी।।
भंग सातवां अस्ति नास्ति सह अवक्तव्य यह आता।
इसे जजूँ मैं भक्ति भाव से, वस्तु स्वभाव कहाता।।8।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सप्तभंगस्याद्वादस्य स्यादस्तिनास्ति-अवक्तव्यधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–दोहा–पूर्णार्घ्य–

वस्तु स्वभावी धर्म के , सात भंग अवदात।
स्याद्वादमय धर्म यह , जजूँ अर्घ ले हाथ।।1।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सप्तभंगमयस्याद्वादस्वरुपवस्तु–स्वभावधर्माय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा । दिव्य पुष्पांजलिः।

इति मंडलस्योपरि द्वितीयदले पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

(10 अर्घ्य)

(जीवदया धर्म अर्घ्य)

–रोलाछंद–

दया धर्म का मूल , सर्व प्रधान जगत में।
जीवन दान महान् , सर्व श्रेष्ठ त्रिभुवन में।।

गृहस्थ मुनि के भेद से दो भेद दया के।
पूजूँ अर्घ चढ़ाय, मम चित बसे दया ये।।9।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु प्रवर्तमानजीवदयापरमधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(रत्नत्रय धर्म अर्घ्य)

रत्नत्रय है धर्म , निश्चित मुक्ति प्रदाता।
सम्यग्दर्शन ज्ञान , चारित से सुखदाता।।
निश्चय औ व्यवहार, द्विविध धर्म रत्नत्रय।
पूजूँ अर्घ चढ़ाय, निज को करूँ धर्म मय।।10।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु कर्मभूमिषु प्रवर्तमानरत्नत्रयधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(आठ अंग के 8 अर्घ्य)

सम्यग्दर्शन रत्न, आठ अंग युत माना।
मोक्ष मार्ग का मूल , मुनियों ने है जाना।।
निःशंकित है अंग , जिन वच में नहिं शंका।
पूजूँ अर्घ चढ़ाय, निज में हो दृढ़ श्रद्धा।।11।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सम्यग्दर्शनस्य निःशंकित–अंगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इह भव में विभवादि , आगे चक्री आदिक।
नाना सुख की चाह, अथवा अन्य मतादिक।।
जो नहिं करते भव्य, निःकांक्षित है उनके।
पूजूँ अंग द्वितीय , मिले आत्म सुख जिससे।।12।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सम्यग्दर्शनस्य निःकांक्षित–अंगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रय से पूत , मुनियों का तन मानो।
मलमूत्रादिक वस्तु , भरित घिनावन जानो।।

ग्लानि न करके भव्य, गुण में प्रीत बढ़ावें।
निर्विचिकित्सा अंग , इसे जजत सुख पावें।।13।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सम्यग्दर्शनस्य निर्विचिकित्सा-अंगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कुत्सित मार्ग कुधर्म , कुपथ लीन जन बहुते।
इनको माने मूढ़, सम्यग्दृष्टी बचते।।
चौथा अंग अमूढ़-दृष्टि कहा जाता है।
इसे पूजते भव्य , उनने भव नाशा है।।14।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सम्यग्दर्शनस्य अमूढ़दृष्टि-अंगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सदा शुद्ध शिवमार्ग , अज्ञानी जन आश्रय।
दोष कदाचित् होंय, उन्हें ढकें शुभ आशय।।
निज आत्मा के धर्म, मार्दव आदि बढ़ावें।
उपगूहन यह अंग , इसे जजत सुख पावें।।15।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सम्यग्दर्शनस्य उपगूहन-अंगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक या चारित, से जो च्युत हो जावे।
उसमें सुस्थिर कर दे, युक्ती आदि उपाये।।
निज को भी शिवमार्ग में ही दृढ़ रक्खे जो।
स्थितिकरण यह अंग , इसे जजें सुख लें वो।।16।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सम्यग्दर्शनस्य स्थितिकरण-अंगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सह धर्मी जन संघ, कपट रहित हो प्रीति।
यथा योग्य सत्कार, यह वात्सल्य की रीती।।
गाय वत्सवत्प्रेम, वात्सल्य गुण माना।
सम्यग्दर्शन अंग , इसे जजत सुख पाना।।17।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सम्यग्दर्शनस्य वात्सल्य-अंगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाह।

निज प्रभावना करे, निज गुण तेज बढ़ावे।
पूजा दान तपादिक से, जिन धर्म दिपावे।।
यह प्रभावना अंग, तम अज्ञान हटावे।
इसको पूजें भव्य, धर्म महात्म्य दिखावें।।18।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सम्यग्दर्शनस्य प्रभावना-अंगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

-दोहा-पूर्णार्घ्य-

अष्ट अंगयुत दृष्टि यह, दोष पच्चीस विहीन।
परमानन्द अमृत भरे, करे दोष सब क्षीण।।2।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु अष्टांगसम्यग्दर्शनाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

इति मंडलस्योपरि तृतीयदले पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

(सम्यग्ज्ञान के 8 अर्घ्य)

-दोहा-

समकित होते ही हुआ, सम्यग्ज्ञान अपूर्व।
फिर भी ज्ञानाराधना , करो अष्टविध पूर्व।।

-नरेंद्र छंद-

स्वर व्यंजन से शुद्ध पूर्ण जो , करे प्रगट उच्चारण।
शब्दाचार करे वृद्धिंगत, शुद्ध ज्ञान आराधन।।
स्वपर भेद विज्ञान प्रकट हो, परमाह्लाद विधाता।
अर्घ चढ़ाकर मैं नित पूजूँ मिले सर्वसुख साता।।19।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सम्यग्ज्ञानस्य शब्दाचाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाह।

सूत्र आदि का अर्थ शुद्ध हो, गुरु की परंपरा से।
पूर्वापर संबंध जुड़ा हो, नहि अनर्थ हो जिससे।।
स्वपर भेद विज्ञान प्रकट हो, परमाह्लाद विधाता।
अर्घ चढ़ाकर मैं नित पूजूँ मिले सर्वसुख साता।।20।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सम्यग्ज्ञानस्य अर्थाचाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शब्द अर्थ की पूर्ण शुद्धि हो, उभयाचार कहावे।
उभय नयों से भी सापेक्षित , ज्ञान ज्योति प्रगटावे।।स्वपर0।।21।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सम्यग्ज्ञानस्य उभयाचाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

त्रय संध्या उल्का ग्रहणादिक , बहुत अकाल बखाने।
इन्हें छोड़ सिद्धांत ग्रन्थ को, पढ़े जिनाज्ञा मानें।।स्वपर0।।22।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सम्यग्ज्ञानस्य कालाचाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हाथ-पैर आदि धोकर के ,शुभ स्थान में पढ़ते।
हाथ जोड़ श्रुत भक्ति आदिकर,विनय बहुत विध धरते।।स्वपर0।।23।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सम्यग्ज्ञानस्य विनयाचाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कुछ रस आदि त्याग कर श्रुत को , पढ़े नियम धर रुचि से।
यह उपधान सहित आराधन, ज्ञान बढ़े नित इससे।।स्वपर0।।24।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सम्यग्ज्ञानस्य उपधानाचाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ग्रन्थ और गुरुजन का आदर , पूजा भक्ति करें जो।
यह बहुमान भावश्रुत करके, केवल ज्ञान करे वो।।स्वपर।।25।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सम्यग्ज्ञानस्य बहुमानाचाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिस गुरु से या जिन शास्त्रों से, ज्ञान प्राप्त हो जाता।
उनका नाम छिपावे नहिं वह, कहा अनिह्नव जाता।।स्वपर।।26।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सम्यग्ज्ञानस्य अनिह्नवाचाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–पूर्णार्घ्य–दोहा–

ज्ञान अष्टविध धारते, प्रगटे केवल ज्ञान।
अर्घ चढ़ाकर मैं करूँ , स्वात्म सुधारस पान।।3।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

–दोहा–

सकल विकल के भेद से , चारित द्विविध महान्।
विकल चरित श्रावक धरें, बनें शील गुणवान्।।

इति मंडलस्योपरि चतुर्थदले पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

(श्रावक धर्म के 2 मुनिधर्म के 13 ऐसे 15 अर्घ्य)

–पद्धड़ी–छंद–

सम्यक्त्व सहित अणुव्रत सुपांच, गुणव्रत शिक्षाव्रत कहे सात।
ये बारहव्रत हैं गृहीधर्म , इनको पूजें वो लहें शर्म।।27।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु विकलचारित्रस्य सम्यक्त्वसहित-अणुव्रतादिद्वादशविधश्रावकधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो दर्शन व्रत सामायिकादि , ग्यारह प्रतिमा व्रत हैं अनादि ।
इनसे श्रावक बनते महान् , यह प्रथम धर्म पूजें सुजान।।28।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु विकलचारित्रस्य दर्शनव्रतादि–एकादशप्रतिमारूपश्रावकधर्मेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(मुनिधर्म के 13 अर्घ्य)

–सोरठा–

मुनिधर्म के भेद , तेरह विध श्रुत में कहे।
उन्हें धरें बिन खेद , वे साधु भवदधि तिरें।।

–भुजंगप्रयात छंद–

महाव्रत अहिंसा , प्रथम है जगत में।
सभी प्राणियों की , दया है प्रगट में।।
दिगंबर मुनी ही , इसे पालते हैं।
जजें जो अहिंसा , वो अघ टालते हैं।।29।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सकलचारित्रस्य अहिंसा–महाव्रताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

असत् अप्रशस्ते, वचन जो न बोलें।
हितंकर मधुर मित , सदा सत्य बोलें।।
यही सत्य व्रत , दूसरा व्रत कहाता।
इसे पूजहूँ , ये वचनसिद्धि दाता।।30।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सकलचारित्रस्य सत्यमहाव्रताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पराया धनं शिष्य आदि न लेना।
महाव्रत अचौर्य निधि वो बखाना।।
इसे पूजते स्वात्म संपत्ति मिलती।
जिसे प्राप्त करते महासाधु गण ही।।31।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सम्यक्चारित्रस्य अचौर्य–महाव्रताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुता मात भगिनी, सदृश सर्व महिला।
महाव्रत सुब्रह्मचर, धरे कोई विरला।।
त्रिजग पूज्य इंद्रादिवंदित ये व्रत है।
इसी से परमब्रह्म होता प्रगट है।।32।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सम्यक्चारित्रस्य बह्मचर्य–महाव्रताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

परिग्रह सभी , मुक्ति जाने में बाधे।
दिगंबर मुनी ही , सभी वस्तु त्यागें।।
जगत भार से, छूटते ही विदेही।
जजूँ पाँचवां व्रत, बनूँ मुक्तिगेही।।33।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सम्यक्चारित्रस्य अपरिग्रह–महाव्रताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चतुर्युग प्रमाणे, धरा देख चलना।
बिना कार्य के, एक भी पग न धरना।।
सुगुरुदेव तीर्थादि-वंदन निमित से ।
गमन हो समिति ईरिया, को जजूँ मैं।।34।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सम्यक्चारित्रस्य ईर्यासमित्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वपर हित व मित मिष्ट, वच नित्य भाषें ।
सुभाषासमिति को, मुनिगण प्रकाशें।।
इसे धारते मुक्तिकन्या भि हो वश।
जजूँ भक्ति से प्राप्त, निर्दोष हों वच।।35।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सम्यक्चारित्रस्य भाषासमित्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

कृतादि रहित अन्न, प्रासुक स्वहितकर।
गृहस्थी के द्वारा, ही लेवें मुनिवर।।
स्वकर पात्र में लें , खड़े एक बारे।
यही एषणा समिति, क्षुध व्याधि टारे।।36।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सम्यक्चारित्रस्य एषणासमित्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कमंडलु व शास्त्रादि, जो वस्तु धरना।
उठाना यदि प्राणियों, पे हो करुणा।।

प्रथम चक्षु से देख, पिच्छी से शोधें।
ये आदान निक्षेप, समिति सपूजें।।37।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सम्यक्चारित्रस्य आदान-निक्षेपणसमित्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हरितकाय जंतू, रहित भूमि पर जो।
स्वमलमूत्र आदि, विकृति को तजें वो।।
विउत्सर्ग समिति, धरें जैन साधू।
जजूँ मैं इसे फिर, स्वशुद्धात्म साधू।।38।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सम्यक्चारित्रस्य व्युत्सर्गसमित्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महादोष रागादि, से चित्त दूरा।
मनोगुप्ति ये, पालते साधु शूरा।।
पुनः शुभ अशुभ, भाव दोनों निरोधे।
निजानंद रसलीन, गुप्ती सुपूजे।।39।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सम्यक्चारित्रस्य मनोगुप्त्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वचनगुप्ति आगम के, अनुकूल बोलें।
पुनः मौन धर, मुक्ति का द्वार खोलें।।
इसी से वचनसिद्धि, दिव्य ध्वनि भी।
मिलेगी अतः, पूजहूँ धार भक्ति।।40।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सम्यक्चारित्रस्य वचोगुप्त्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वतन की क्रिया सर्व, शुभ ही करें जो।
पुनः काय से मोह, तज सुस्थिरी हों।।
उभय कायगुप्ती, शुकल ध्यान पूरे।
जजूँ मैं इसे, नंतबल मुझ प्रपूरे।।41।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु सम्यक्चारित्रस्य कायगुप्त्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–चौबोलछंद–पूर्णार्घ्य–

पाँच महाव्रत पाँच समिति औ, तीन गुप्ति ये तेरह विध।
सम्यक् चारित मुक्ति प्रदायक, अठबिस मूलगुणों से युत।।
द्वादश तप बाईस परीषह, चौंतिस उत्तर गुण जानों।
लाख चौरासी गुण सर्वाधिक, पूजत ही भव दुःख हानो।।4।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु त्रयोदशविधसर्वोत्कृष्टाचतुर-शीतिलक्षगुणयुतसम्यक्चारित्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

इति मंडलस्योपरि पंचमदले पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

(दशधर्म के 10 अर्घ्य)

–गीताछंद–

क्रोध के बहु निमित मिलते, हो न मन में कलुषता।
निज अशुभ कर्मोदय निमित लख, पियें समरसमय सुधा।।
उत्तम क्षमा यह धर्म जग में, वैर निज पर का हरे।
यह पूर्ण शांति सौख्यदाता, पूजतें मन खुश करे।।42।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु उत्तमक्षमाधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मृदुभाव मार्दव मान हरता , विनय गुण चित में भरे।
हो उच्चगोत्री मनुष चक्री, सुरपति के पद धरे।।
कुल जाति बल रूपादिमद से, मिलत है नीची गती।
अतएव मार्दव गुण बड़ा है, पूजते दे शिवगति।।43।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु उत्तममार्दवधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मन वचन तन की कुटिलता से, योनि तिर्यक् की मिले।
मन वचन तन की सरलता से, ऋजू शिवगति भी मिले।।

विश्वासघात समान नहिं है, पाप जग में अन्य कुछ।
अतएव आर्जव धर्म उत्तम, पूजहूँ मैं भक्ति युत।।44।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु उत्तम-आर्जवधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सच हैं प्रशस्त सुवचन निंदा, पाप कलहादिक रहित।
हो जाय विपदा धर्म पर, ऐसा न सच बोले क्वचित।।
जिनकथित मेरू आदि हैं, अपमृत्यु भी हो लोक में।
यह सत्य वच सर्वोच्च जग में, पुजहूँ दे धोक मैं।।45।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु उत्तमसत्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

यह लोभ पाप महान् जग में, सर्व पापों का जनक।
धन स्वास्थ्य इंद्रिय आदि का भी, लोभ है दुखकर प्रगट।।
गंगा-यमुना स्नान से नहिं, आत्म शुद्धी हो कभी।
तज लोभ उत्तम शौच से हो, स्वात्मशुचि पूजूँ अभी।।46।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु उत्तमशौचधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

त्रस और स्थावर सभी, षट्काय जीवों पर दया।
पंचेंद्रियों औ चपल मन का, शास्त्रविधि से वश किया।।
संयम सकल या देशसंयम, देवगति ही देयगा।
जो भव्य धारेंगे इसे, उन जन्म दुःख हर लेयगा।।47।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु उत्तमसंयमधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तप बाह्य आभ्यंतर उभय, बारह प्रकार प्रसिद्ध हैं।
जो करें उपवासादि उनको, ऋद्धि सिद्धि प्रगट हैं।।
स्वाध्याय प्रायश्चित विनय, व्युत्सर्ग वैयावृत्य तप।
औ ध्यान आत्म विशुद्धि करते, इन बिना नहिं मुक्तिपद।।48।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु उत्तमतपोधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुचि रत्नत्रय का दान उत्तम, त्याग आगम में कहा।
आहार औषधि अभय ज्ञान, सुदान चउविध भी कहा।।
इन दान में खर्चा गया , धन कूप जलसम बढ़ेगा।
फल भी अनंते गुणा देकर, मोक्ष में ले धरेगा।।49।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु उत्तमत्यागधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कुछ भी न मेरा यह अकिंचन , धर्म सब सुख देयगा।
मुनिवर अकिंचन धर्म पाले, निजगुण अनंते ले सदा।।
जो भी अणुव्रत धारते , क्रम से ममत्व घटाइये।
त्रैलोक्य संपति के धनी बन, स्वात्मरस सुख पाइये।।50।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु उत्तम-आकिंचन्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सब नारियों को मातृवत , गिन ब्रह्मचारी जो बनें।
महिलायें भी ब्रह्मचारिणी, बन पूज्य होती जगत में।।
निज ब्रह्म में रति ब्रह्मचर्य , सुरेन्द्रगण भी नमत हैं।
इकदेश व्रत ब्रह्मचर्य से यहां, अनल भी जल बनत हैं।।51।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु उत्तमब्रह्मचर्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–पूर्णार्घ्य–चौबोलछंद–

वैराग्य त्याग दो काष्ठ खंड से, निर्मित सुघड़ नसैनी है।
दशधर्मों की दश पैड़ी से युत, मोक्षमहल की सीढ़ी हैं।।
मुमुक्ष मुनिगण इससे चढ़कर, मुक्तिरमा ढिंग जाते हैं।
दशधर्मों को मैं नित पूजूँ, ये निज राज्य दिलाते हैं।।5।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु केवलिप्रज्ञप्तदशधर्माय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

(भरत-ऐरावत-विदेह के 5 पूर्णार्घ्य)

शंभुछंद

पण भरतक्षेत्र आरजखंड में, जब चौथा काल वरतता है।
तब धर्मतीर्थ प्रकटित होता, पाँचवें अंत तक चलता है।।
इस हुंडावसर्पिणी के कारण, तिसरे के अंत से शुरू हुआ।
यह धर्म अनादिअनिधन भी, त्रयकालिक इसको जजूँ यहाँ।।6।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थपंच-भरतक्षेत्रसंबंधिभूतभाविवर्तमानकालिक-केवलिप्रज्ञप्तजिनधर्माय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पण ऐरावत आरजखंड में , चौथे व पांचवें कालों में।
जिनधर्म प्रगट होता फिर भी, नहिं इसका आदि अंत जग में।।
पर्याय दृष्टि से सादि सांत, यह धर्मचक्र मंगलकारी।
यह लोकोत्तम औ शरणभूत, इसको पूजूँ सब सुखकारी।।7।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थपंच-ऐरावतक्षेत्रसंबंधिभूतभाविवर्तमानकालिक-केवलिप्रज्ञप्तजिनधर्माय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मेरू के पूरब दिश सोलह, सोलह विदेह के देश कहे।
उनमें पांचों कल्याणक या, दो तीन सहित जिनराज रहें।।
वह शाश्वत जैनधर्म रहता, नहिं अंतर कभी पड़े उनमें।
सीमंधर जिन वह पर विहरें, जिनधर्मसासता उसे जजें।।8।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थपंच-पूर्वविदेहक्षेत्रसंबंधिशाश्वतत्रयकालिककेवलि-प्रज्ञप्तजिनधर्माय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मेरू के पश्चिम दिश सोलह, सोलह विदेह शाश्वत मानें।
वहां धर्मचक्र चलता संतत, भव्यों के भवभय दुःख हाने।।
यह समवसरण में गंधकुटी, की तिसरी कटनी पर राजे।
इसमें हजार आरे चमकें , चक्री भी पूजें भव नाशें।।9।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थपंच-पश्चिमविदेहक्षेत्रसंबंधिशाश्वतत्रयकालिककेवलिप्रज्ञप्त-जिनधर्माय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ये कर्मभूमि इक सौ सत्तर, जिनधर्म सदा चलता रहता।
सब जीव दयामय धर्म और, यह स्याद्वाद से भी रहता।।
रत्नत्रय है धर्म व दशविध , धर्म कहा दशलक्षण मय।
मैं जजूँ नित्य पूर्णार्घ लिये, यह शाश्वत सौख्य सुधारसमय।।10।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थएकशतसप्ततिकर्मभूमिसंजातजीवदयामयवस्तु-स्वभावस्वरूपरत्नत्रयरूपदशलक्षणधर्मस्वरूपत्रैकालिकजिनधर्मेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य मंत्र—ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु प्रवर्तमानकेवलि-प्रणीत-जिनधर्माय नमः। *अथवा*

ॐ ह्रीं श्री केवलिप्रणीतजिनधर्माय नमः।

जयमाला

-शंभुछंद-

तीर्थंकर प्रभु के श्री विहार में , धर्मचक्र आगे आगे।
चलता रहता जिससे भू पर, जीवों के दुःख दारिद भागे।।
सर्वाण्ह यक्ष चारों दिश में , यह धर्मचक्र शिर पर धारें।
जिनधर्म अनादि औ अनंत, इसकी जयमाला भव टारें।।1।।

-पंचचामरछंद-

जयो जिनेन्द्र धर्म जीव की दया प्रधानमय।
जयो जिनेन्द्र धर्म वस्तु का स्वभाव शुद्धमय।।
जयो जिनेन्द्र धर्म जो क्षमादि दश प्रकार हैं।
जयो जिनेन्द्र धर्म तीन रत्न रूप सार है।।1।।
इसे धरें स्वयंवरा अनंत ऋद्धियाँ वरें।
हितंकरा अनंत सिद्धियां स्वयं पगे परें।।
शुभंकरा ध्वनी अनंत भव्य को सुखी करे।
समस्त जीव राशि को प्रियंवदा सुखी करे।।2।।

गणेश धारते इसे महा प्रमोद भाव से।
मुनीश धारते इसे बचें विभाव भाव से।।
सुरेश नित्य चाहते मनुष्य जन्म में मिले।
नरेश नित्य गावते यही धरम हमें मिले।।3।।

महान् धर्म इन्द्रवंद्य केवली प्रणीत है।
महान् धर्म चक्रिवंद्य सर्व मंगलीक है।।
महान् धर्म साधु पूज्य लोक में सुश्रेष्ठ है।
महान् धर्म भव्य को सदैव शर्ण देत है।।4।।

अनादि जैन धर्म ये समस्त सौख्य खान ही ।
अनादि जैन धर्म को मनीषि धारते यहीं।।
अनादि जैन धर्म से विनाशते करम सभी।
अनादि जैन धर्म के लिए नमोऽस्तु हो अभी।।5।।

अनादि जैन धर्म से बड़ा न कोई मित्र है।
अनादि जैन धर्म का दया हि मूल इष्ट है।।
अनादि जैन धर्म में सदैव चित्त को धरो।
अहो अनादि जैन धर्म ! मुझपे नित कृपा करो।।6।।

जिनेन्द्र धर्म से सुचक्रवर्ति संपदा मिले।
जिनेन्द्र धर्म से सुरेन्द्र की भि संपदा मिले।।
जिनेन्द्र धर्म से हि तीर्थनाथ संपदा मिले।
जिनेन्द्र धर्म से हि शीघ्र मुक्ति वल्लभा मिले।।7।।

दोहा

जन्म मरण व्याधी महा, उसके नाशन हेत।
धर्म महौषधि मैं नमूं, 'ज्ञानमती' शिव हेत।।8।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु प्रवर्तमानकेवलिप्रणीतजिनधर्माय जयमाला महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

–शेरछंद–

जो भव्य जिनधर्म का विधान करेंगे।
संपूर्ण रोग शोक अमंगल को हरेंगे।।
जिनदेवदेव भक्ति से निजसौख्य भरेंगे।
आर्हन्त्य 'ज्ञानमती' से ही सिद्ध बनेंगे।।1।।

इत्याशीर्वादः।

बड़ी जयमाला

शंभु छंद

जय जय श्रीपति जय लक्ष्मीपति, जय जय मुक्ती ललना पति हो।
जय जय त्रिभुवन पति गणपति के, पति जय हरि हर ब्रह्मा पति हो।।
कर्मों के भेत्ता हित उपदेष्टा, त्रिभुवन त्रिसमय वेत्ता हो।
जय जय केवलज्ञानी भगवन् , तुम ही शिव पथ के नेता हो।।1।।

जहं आप विराज रहें भगवन् ! सौ सौ योजन तक उस दिश में।
दुर्भिक्ष अकाल नहीं पड़ता, रहता सुभिक्ष उस उस थल में।।
जब श्री विहार होता भगवन् , आकाश में आप गमन करते।
हिंसा जीवों की नहिं किंचित् , नहिं कवलाहार आप करते।।2।।

उपसर्ग न तुम पर हो सकता, चारों दिश चउ मुख दिखते हैं।
नहिं छाया नहीं पलक झपकें, नख रोम नहीं बढ़ सकते हैं।।
सब विद्याओं के ईश आप, औ दिव्यध्वनी भी खिरती है।
जो तालु ओंठ कंठादिक के, व्यापार रहित ही दिखती है।।3।।

अठरह महभाषा सात शतक, क्षुद्रक भाषामय दिव्य धुनी।
उस अक्षर अनक्षरात्मक को, संज्ञी जीवों ने आन सुनी।।
तीनों संध्या कालों में वह त्रय त्रय मुहूर्त स्वयमेव खिरे।
गणधर चक्री औ इंद्रों के, प्रश्नोंवश अन्य समय भि खिरे।।4।।

भव्यों के कर्णों में अमृत, बरसाती शिव सुखदानी है।
चैतन्य सुधारस की झरणी, दुख हरणी यह जिनवाणी है।।
प्रभु को जब केवलज्ञान हुआ, ये ग्यारह[1] अतिशय माने हैं।
इन अद्भुत गुण की संख्या को, सूरि यतिवृषभ बखाने हैं।।5।।

जय जय तुम वाणी कल्याणी, गंगाजल से भी शीतल है।
जय जय शमगर्भित अमृतमय, हिमकण से भी अतिशीतल है।।

1. तिलोयपण्णत्ती में यतिवृषभ आचार्य ने केवलज्ञान के ग्यारह अतिशय तथा देवकृत तेरह अतिशय माने हैं। (ति. प. अधिकार 4, पृ. 263)

चंदन औ मोती हार चंद्रकिरणों से भी शीतलदायी।
स्याद्वादमयी प्रभु दिव्यध्वनी, मुनिगण को अतिशय सुखदायी।।6।।

वस्तू में धर्म अनंत कहे, उन एक एक धर्मों को जो।
यह सप्तभंगि अद्भुत कथनी, कहती है सात तरह से जो।।
प्रत्येक वस्तु में विधि निषेध, दो धर्म प्रधान गौण मुख से।
वे सात तरह से हों वर्णित, नहिं भेद अधिक अब हो सकते।।7।।

प्रत्येक वस्तु है अस्ति रूप, औ नास्ति रूप भी है वो ही।
वो ही है उभय रूप समझो, फिर अवक्तव्य है भी वो ही।।
वो अस्तिरूप औ अवक्तव्य, फिर नास्ति अवक्तव भंग धरे।
फिर अस्ति नास्ति औ अवक्तव्य, ये सात भंग हैं खरे खरे।।8।।

स्वद्रव्य क्षेत्र औ काल भाव, इन चारों से वह अस्तिमयी।
परद्रव्य क्षेत्र कालादि से, वो ही वस्तू नास्तित्व कही।।
दोनों को क्रम से कहना हो, तब अस्तिनास्ति यह भंग कहा।
दोनों को युगपत कहने से, हो अवक्तव्य यह तुर्य कहा।।9।।

अस्ती औ अवक्तव्य क्रम से, यह पंचम भंग कहा जाता।
नास्ती औ अवक्तव्य छट्ठा, यह भी है क्रम से बन जाता।।
क्रम से कहने से अस्ति नास्ति, औ युगपत अवक्तव्य मिलके।
यह सप्तम भंग कहा जाता, बस कम या अधिक न हो सकते।।10।।

इस सप्त भंग मय सिन्धू में, जो नित अवगाहन करते हैं।
वे मोह रागद्वेषादिरूप, सब कर्म कालिमा हरते हैं।।
वे अनेकांतमय वाक्य सुधा, पीकर आतमरस चखते हैं।
फिर परमानन्द परमज्ञानी, होकर शाश्वत सुख भजते हैं।।11।।

मैं निज अस्तित्व लिये हूँ नित, मेरा पर में अस्तित्व नहीं।
मैं चिच्चैतन्य स्वरूपी हूँ, पुद्गल से मुझ नास्तित्व सही।।
इस विध निज को निज के द्वारा, निज में ही पाकर रम जाऊँ।
निश्चय नय से सब भेद मिटा, सब कुछ व्यवहार हटा पाऊँ।।12।।

भगवन् ! कब ऐसी शक्ति मिले, श्रुतदृग से निज को अवलोकूँ।
फिर स्वसंवेद्य निज आतम को, निज अनुभव द्वारा मैं खोजूँ।।
संकल्प विकल्प सभी तज के, बस निर्विकल्प मैं बन जाऊँ।।
फिर केवल 'ज्ञानमती' से ही, निज को अवलोकूँ सुख पाऊँ।।13।।

–दोहा–

श्री जिनेन्द्र का धर्म यह, जैनधर्म सुखकार।
सार्वभौम जिनधर्म को, नमूं अनंतों बार।।14।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपस्थसप्ततिशतकर्मभूमिषु प्रवर्तमानकेवलिप्रणीतजिनधर्माय महाजयमाला महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

–शेरछंद–

जो भव्य जिनधर्म का विधान करेंगे।
संपूर्ण रोग शोक अमंगल को हरेंगे।।
जिनदेवदेव भक्ति से निजसौख्य भरेंगे।
आर्हन्त्य 'ज्ञानमती' से ही सिद्ध बनेंगे।।1।।

इत्याशीर्वादः।

प्रशस्ति

–शंभु छंद–

त्रिभुवन में धर्म वही उत्तम, जो श्रेष्ठ सुखों में धरता है।
सांसारिक सभी सौख्य देकर, मुक्ती पद तक पहुँचाता है।।
इस रत्नत्रयमय धर्मतीर्थ के, कर्ता तीर्थंकर बनते।
इनको प्रणमूँ मैं बार बार, ये सर्व आधि व्याधी हरते।।1।।

श्री गौतमगणधर को प्रणमूँ, मां सरस्वती को नमन करूँ।
श्री धरसेनाचार्य गुरु को, कोटि कोटि नित नमन करूँ।।
श्री पुष्पदंत आचार्य भूतबलि, सूरी को शिरनत प्रणमूँ।
श्री कुंदकुंद आचार्य नमूँ, सब पूर्वाचार्यों को प्रणमूँ।।2।।

श्री महावीर के शासन में, श्री कुंदकुंद आम्नाय प्रथित।
सरस्वती गच्छ गण बलात्कार से, जैन दिगम्बर धर्म विशद।।
इस परम्परा में सदी बीसवीं, के आचार्य प्रथम गुरुवर।
चारित्र चक्रवर्ती श्री शान्तीसागर सबके गुरू प्रवर।।3।।

इन प्रथमशिष्य पट्टाधिप श्री, गुरु वीरसागराचार्य हुए।
मुझको ये आर्यिका ज्ञानमती, करके अन्वर्थक नाम दिये।।
इन रत्नत्रय दाता गुरु को, है मेरा वंदन बार बार।
माँ सरस्वती को नित्य नमूँ , जिनका मुझ पर है बहूपकार।।4।।

इस दुषमकाल के अन्त समय तक, जैनधर्म जयवंत रहे।
इस हस्तिनागपुर में तब तक, यह जैन भूगोल स्थायि रहे।।
जिनधर्म विधान रचा सुंदर यह भव्यजनों को पुष्ट करे।
मुझ 'ज्ञानमति' केवल करके, मेरे रत्नत्रय पूर्ण करे।।6।।

।।इति जिनधर्मविधानं संपूर्णम्।।
इति शं भूयात्।

आरती

–आर्यिका सुदृढ़मती

तर्ज –झुमका गिरा रे.....

आरति करो रे, केवली प्रणीत श्री जिनधर्म की आरति करो।
तीर्थंकर के श्री विहार में, धर्म चक्र चलता आगे।
प्रभु प्रभाव से जीवों के, सब रोग, शोक दारिद भागे।
आरति करो, आरति करो, आरति करो रे,
रत्नत्रयमय इस धर्म तीर्थ की आरति करो रे।।1।।
श्री जिनेन्द्र का धर्म ही जग में, जैनधर्म कहलाता है।
जो भी इसकी शरण में आता, भव सागर तर जाता है।।
आरति करो, आरति करो, आरति करो रे,
इस आदि अंत से रहित धर्म की आरति करो रे।
नव देवों में एक देव, जिनधर्म को माना जाता है।
जो भी इसकी पूजन करता, मनवांछित फल पाता है।।
आरति करो, आरति करो, आरति करो रे,
इस केवलि भगवन् कथित धर्म की आरति करो रे
''सुदृढ़मती'' इस धर्म का पालन, मुनि श्रावक दोनों करते।
सकल विकल चारित्र रूप, दो भेद कहे जिन आगम में।।
आरति करो, आरति करो, आरति करो रे,
उत्तम क्षमादि मय दश धर्मों की आरति करो रे।

भजन

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

तर्ज –हम लाए हैं तूफान से .....

दुनिया में जैनधर्म सदा से ही रहा है।
प्रभु ऋषभ महावीर ने भी यही कहा है।।टेक.।।
जब से है धरा आसमाँ सौन्दर्य प्रकृति का।
तक से ही प्राणियों में है विश्वास धर्म का।।
हर जीव के सुख का यही आधार रहा है।
प्रभु ऋषभ महावीर ने भी यही कहा है।।1।।
जो कर्म शत्रुओं को जीत ले जिनेन्द्र है।
जिनवर के उपासक ही असलियत में जैन हैं।।
यह धर्म जाति भेद से भी दूर रहा है।
प्रभु ऋषभ महावीर ने भी यही कहा है।।2।।
चांडाल सिंह सर्प भी धारण इसे करें।
मिश्री की भाँति मिष्ट फल को प्राप्त वे करें।।
यह सार्वभौम विश्व धर्मरूप रहा है।
प्रभु ऋषभ महावीर ने भी यही कहा है।।3।।
इस प्राकृतिक उद्यान को सींचा है सभी ने।
इससे ही अहिंसा धरम सीखा है सभी ने।।
यह आदि अंत से रहित अनादि कहा है।
प्रभु ऋषभ महावीर ने भी यही कहा है।।4।।
इसका कभी न अंत होगा सदा रहेगा।
कलियुग के कालचक्र का संकट भी सहेगा।।
यह धर्म ''चंदनामती'' जिन सूर्य कहा है।
प्रभु ऋषभ महावीर ने भी यही कहा है।।5।।